जैन परम्परा में संघीय साधना का महत्त्व

□ साध्वी श्री कंचनकुमारी 'लाडनूं'
[युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी की शिष्या]

जैन परम्परा में साधना दो भागों में विभाजित हुई है—एक संघबद्ध साधना, दूसरी संघमुक्त साधना। जिनकल्पी मुनि संघ से मुक्त होकर सर्वोत्कृष्ट साधना के पथ पर बढ़ते हैं और कई साधक संघबद्ध होकर साधना करते हैं। तत्त्वतः वैयक्तिक साधना की पृष्ठभूमि संघ ही है। अहिंसा, सत्य, मैत्री आदि की साधना भी संघीय धरातल पर ही पल्लवित एवं पुष्पित हुई है। जिनकल्पी साधक कठोर साधना कर ले अन्ततः मोक्ष-प्राप्ति के लिए उसे संघ की शरण में आना ही पड़ेगा, क्योंकि कैवल्य का उपयोगी क्षेत्र संघ ही है। यदि संघ व समाज न हो तो व्यक्ति के ज्ञान और विज्ञान की उपयोगिता सिद्ध नहीं होती।

भगवान महावीर ने साधना के परिपाक में सम्पूर्ण ज्ञानोपलब्धि के प्रथम दिन में ही एक विशाल संघ का निर्माण किया। १४००० श्रमण, ३६००० श्रमणी परिवार का एक बृहत् संघ था। धर्मसंघ के इतिहास में यह प्रथम संघ था। गौतम बुद्ध ने भी बोधिलाभ के पश्चात् संघ का निर्माण किया। धर्मसंघ का महत्त्व सर्वोपरि है। संघ त्राण है, प्राण है, प्रतिष्ठा है, गौरव है, और सर्वस्व है। संघ की गरिमा अनिवर्चनीय है, अनुपमेय है और अगम्य है। स्वयं भगवान ने संघ को नमस्कार किया है—'तित्थयर वंदणिज्जं संघं तित्थयरो, विय एयं णमए गुरु भावओ वेव'। तीर्थंकरों ने संघ को अपने से अधिक महान् एवं सर्वोपरि माना है। भगवान बुद्ध के शब्दों में 'संघं शरणं गच्छामि'।

यद्यपि व्यक्ति महान् है, पर उससे अधिक महान् संघ है। व्यक्ति की अपेक्षा समाज बड़ा है। व्यक्ति अणु है, संघ पूर्ण। व्यक्ति छोटा है, संघ महान् है। व्यक्ति आखिर व्यक्ति है, संघ संघ है। व्यक्ति की शक्ति सीमित है, संघ सर्वशक्तिमान है। अतः राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति आदि हर क्षेत्र में सामूहिकता की प्रधानता रही है।

देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् महात्मा गांधी से किसी एक व्यक्ति ने कहा—बापू! अब आपको हिमालय में जाकर एकान्त साधना करनी चाहिए। गांधीजी ने उत्तर दिया—भाई! अगर जनता हिमालय में जायगी तो मैं भी वहाँ पहुँच जाऊँगा, क्योंकि मेरे महात्मापन का थर्मामीटर समाज है। हिमालय में मेरी साधना की कसौटी कौन करेगा? अतः मेरी साधना का स्वरूप जनता के बीच ही निखर पायेगा।

संघ सामुदायिक जीवन है, समुदाय का अर्थ है—इकाइयों का योग। इकाई अपने आप में पूर्ण नहीं होती। अकेले व्यक्ति के पथ में अगणित अवरोध आते हैं। वहाँ व्यक्ति का मनोबल टूटने लग जाता है, तो वह सम्भवतः कहीं भटक भी सकता है, अतः इसकी पूर्णता के लिए संघ बहुत बड़ा आलम्बन है। जीवन की सुरक्षा का सबसे बड़ा कवच संघ है। जैसे संघ के साथ यात्रा करने वाला सुगमता से निश्चित लक्ष्य को पा लेता है उसी प्रकार धर्मसंघ की छत्रछाया में आया साधक अपने लक्ष्य को सानन्द प्राप्त कर लेता है। संघ में व्यक्ति का अपना कुछ नहीं होता, व्यक्ति स्वयं संघरूपी समाज का है, और उसकी समग्र अपेक्षा समाज संबद्ध है। एक के लिए सब और सब के लिये एक। संघ का हर सदस्य अन्य हर सदस्य की सहानुभूति के लिए सदा समर्पित रहता है। तत्काल निजी स्वार्थों का और व्यक्तिगत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हितों का बलिदान कर देता है। एक दूसरे से इतने संपृक्त होते हैं कि सुख-दुःख में पूर्ण सहयोगी बनकर रहते हैं। जैसे— दूध और मिश्री। यही सामूहिक साधना की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। वस्तुतः जीवन में प्रेम, वात्सल्य और समर्पण का रस है, वह व्यक्ति के अस्तित्व का मूल है, त्राण है। जहाँ यह अमिय रस नहीं, वहाँ जीवन निष्प्राण और कंकाल बनकर रह जाता है।

सामूहिक जीवन में क्रोध, ईर्ष्या, अभिमान, स्नेह, द्वेष आदि सहज सम्भव है। अकेला व्यक्ति किस पर क्रोध करेगा? किसका अहं करेगा? और क्या सहेगा? जबकि वहाँ राग-द्वेष उभरने का कोई अवसर ही नहीं आता। जैसे चाहे कर सकता है, जहाँ चाहे जा सकता है। न उस पर कोई बन्धन है और न कोई अनुशासन। अकेला व्यक्ति ऊँची से ऊँची साधना कर सकता है, पर उस साधना की कसौटी संघ ही है।

संघ अनेक सदस्यों का समवाय है। समवाय में रहने वाले सभी सदस्य समान प्रकृति व विचार वाले नहीं होते, सब एक रुचि वाले नहीं होते। चिन्तन भी सब का एक नहीं होता। इसलिए सब के साथ रहकर संघ की रुचियों और प्रवृत्तियों के साथ सामंजस्य स्थापित करना, अनेक अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगों में अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखना और अहंकार व ममकार से असंस्पृष्ट रहना ही बहुत बड़ी साधना और कड़ी तपस्या है।

परस्परता, संबद्धता का मूल मन्त्र है, क्योंकि बिना परस्परता के संघ चल नहीं सकता। जिस संगठन में परस्परता की भावना का विकास होता है उस संगठन की नींव सुदृढ़ एवं चिरस्थाई बन जाती है। संघ में शैक्ष, वृद्ध, रुग्ण आदि भी होते हैं। इसलिए हर साधक का कर्तव्य हो जाता है कि वह निष्काम और अग्लान भाव से अपनी सेवा देकर दूसरों की चित्त समाधि का निमित्त बने।

पारस्परिक शालीनता के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र आवश्यक हैं। जहाँ दूसरों से सहयोग लेने की अपेक्षा हो वहाँ 'कृपया' शब्द का प्रयोग करें, और कार्य समाप्ति पर "कृतज्ञास्मि" शब्द से आभार प्रदर्शित करें। अवज्ञा व अशातना होने पर 'खेद' शब्द द्वारा खेद प्रकट करें। यदि किसी कार्यवश कोई कार्य न कर सका तो 'क्षमा करें' ऐसा कहे। इन महत्त्वपूर्ण पहलुओं से सामुदायिक जीवन की शालीनता बनी रहती है।

साधक को किस धर्मसंघ में रहना चाहिये? जो धर्मसंघ प्राणवान् है, आचारनिष्ठ है, विशुद्ध नीति वाला है, गीतार्थ मुनियों से परिवेष्टित है, जहाँ ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उपासना होती है, जीवन की परम साधना और धर्म की आराधना होती है। जिस धर्म संघ के दोनों अंग—साधु और साध्वी विनम्र हैं, विनय का उच्चतम आदर्श हैं, सदा जागरूक हैं, प्रबुद्ध हैं और संघ के प्रति आत्मीयता, निष्पक्ष व्यवहार और सद्भावना बनाये रखते हैं। संघ विकास में सक्रिय योगदान करते हैं। आचार्य के प्रति सर्वात्मना समर्पित हैं। वह धर्मसंघ विश्व में कीर्तिमान स्थापित करता है। "बृहत्कल्पभाष्य" में गच्छ की परिभाषा करते हुए लिखा है—जिस गच्छ में सारणा-वारणा और प्रेरणा नहीं होती, वह गच्छ नहीं है। साधक को उस गच्छ को छोड़ देना चाहिये।

जहिं णत्थि सारणा वारणा पडिचोयणा य गच्छामि।
सो उ अगच्छो गच्छो, संजय कामिणी॥

मोक्ष की साधना के लिए संघ की आराधना अपेक्षित है। गच्छ महाप्रभावशाली है। उस गौरवशाली धर्मसंघ में रहने से महानिर्जरा होती है। सारणा वारणा तथा प्रेरणा आदि से नये दोषों की उत्पत्ति रुक जाती है। अप्रतिम शास्त्रज्ञ अनुशास्ता के नेतृत्व में और बहुश्रुत मुनियों के परिप्रेक्ष्य में रहने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र के अनन्त वैभव को प्राप्त कर साधक अपने अन्तर्जगत में नई चेतना पाता है। उनके उपपात में रहने से मौलिक तत्त्वों का चिन्तन व मनन होता है, जिससे मनीषा की स्फुरणा होती है, नये-नये उन्मेष आते हैं। संघ में विकास के अनेक आयाम उद्घाटित होते हैं। युगानुकूल शिक्षा, साधना, साहित्य आदि नाना कलाओं को विकसित होने का मुक्त अवसर मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुकुलवास एक पवित्र गंगा है। उसमें अधिस्नात साधक की साधना स्वर्ण की तरह और अधिक चमक उठती है। अतः "वसे गुरुकुलवासे निच्चं" साधक को जीवनपर्यन्त गुरुकुलवास में ही रहना चाहिये। धर्मसंघ में सुयोग्य शिष्यों का होना मणिकांचन का सुयोग माना जाता है। उदीयमान शिष्यों से संघ की प्रतिभा और अधिक निखर जाती है। योग शतक में सुशिष्य की परिभाषा इस प्रकार की है—

अणुवतमा विणीया बहुकखमा निच्च भत्ति भंताय।
गुरुकुलवासी अमूइ धन्न सीसा हुइ सुसीला ॥

जो शिष्य भक्ति परायण है, क्षमाशील, इंगियागार सम्पन्न है, सुव्रत व सुशील है। साधना काल में आने वाले उपसर्गों से जो क्लान्त नहीं होता, ऐसा उपशान्त और शान्त स्वभावी आत्मविजेता साधक ही गण में तादात्म्य होकर साधना कर सकता हैं। संघ मेरा है और मैं संघ का हूँ। यह विलक्षण तादात्म्य अटूट आस्था का प्रतीक है। इसी सन्दर्भ में आचार्य श्री तुलसी की वाणी मुखरित हो उठी। धर्मसंघ जीवन चेतना का प्रतीक है, साधना का साकार रूप है।

गणो चमहमेवास्मि, अदमेन गणो स्तययम्।
एकेयं ममास्य चान्योन्यं चिन्तनीयमिति ध्रुवम् ॥

गच्छाचारपइन्ना में शिष्य की उजागरता की स्पष्ट झलक—जिस संघ के शिष्य-शिष्याएँ अपने अनुशास्ता के द्वारा उचित या अनुचित डांट को कठोर शब्दों में सुनकर केवल 'तहत' शब्द का ही प्रयोग करें।

संघीय साधना करने वालों के लिए समर्पण अनिवार्य होता है। साधु-साध्वियाँ, संघ और संघपति के प्रति इस प्रकार समर्पित हो जाएँ जैसे रोगी कुशल वैद्य को अपना स्वास्थ्य सौंपकर निश्चित् हो जाता है। ठीक उसी प्रकार साधक भी अपने जीवन को अपने अनुशास्ता को सौंपकर पूर्ण निश्चिन्त विश्वस्त और आश्वस्त बन जाता है।

जस्स गुरुम्मि न भक्ति न य बहुमाणे न गऊरं व न भयं।
न वि लज्जा जवि ने हो गुरुकुल वासेण किं तस्स ॥

अगर शिष्यों में गुरु के प्रति न आदर्श है और न श्रद्धा, न भक्ति है, न भय है, न बहुमान और न स्नेह है, संघ और संघपति के प्रति न गौरव है—ऐसे शिष्यों को गुरुकुलवास में रहने से क्या लाभ? प्रत्युत उन शिष्यों से संघ की प्रभावना निष्प्रभ बन जाती है। जो शिष्य धर्मसंघ की गरिमा के साथ इस प्रकार आँख मिचौनी करता है। धर्म शासन की प्रभावना में खिलवाड़ करता है। वह सदस्य संघ के लिए क्षम्य नहीं है और संघ में उसका कोई उपयोग नहीं है।

संघ और संघपति का सम्बन्ध अद्वैत है। दोनों में तादात्म्य-सम्बन्ध है। धर्मसंघ की प्राणवत्ता के लिए कुशल अनुशास्ता की आवश्यकता होती है। संघ में मंद, मध्यम और प्रकृष्ट सभी प्रकार की प्रज्ञा व साधना वाले साधक होते हैं, अतः आचार्य का कर्त्तव्य हो जाता है—संघ की सारणा-वारणा निष्पक्ष व तटस्थ भावों से करें। सारणा का अर्थ है कर्त्तव्य की प्रेरणा और वारणा का अर्थ है अकर्त्तव्य का निषेध। धर्मसंघ के संगठन को अक्षुण्ण रखने के लिए व्यवस्था, मर्यादा और अनुशासन बहुत जरूरी है। व्यवस्था को सुव्यवस्थित रखने के लिए मर्यादा की उपादेयता स्वयं फलित होती है। क्योंकि बिना मर्यादा के व्यवस्था चल नहीं सकती। साधारण गति से मर्यादा में चलने वाला जल सुदूर क्षेत्रों तक जाकर धरा को शस्यश्यामला बनाता है। पतंग डोर के सहारे अनन्त आकाश में चाहे जितना ऊँचा उठ सकता है। मर्यादा विहीन जीवन बिना तारों की विद्युत है, जिसका कोई उपयोग नहीं। मर्यादाविहीन प्रभात अन्धकार बन जाता है और मर्यादायुक्त अन्धकार प्रभात बन जाता है। जिस संघ में मर्यादा नहीं, वह संघ निष्प्राण तथा निस्तेज है। मर्यादा के अभाव में कोई संस्था सजीव नहीं बन सकती।

मर्यादा बहुत ही मनोवैज्ञानिक और महत्त्वपूर्ण है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हर व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी होता है। अपने से अधिक प्रतिष्ठा और सम्मान-प्राप्त व्यक्ति को देखकर मन में स्पर्धा के भाव सहज उत्पन्न हो सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः मर्यादा, अपरिपक्वता का परित्राण है, संयमी जीवन का प्राण है, आत्म-समाधि का सोपान है और समस्याओं का सुन्दर समाधान है।

जिस धर्मसंघ में संघ की प्रगति के लिए आचार्य के द्वारा सामयिक और तत्कालीन मर्यादाओं का परिवर्तन, परिवर्धन व नवीनीकरण होता रहता है वह धर्मसंघ प्राणवान कहलाता है।

संघीय परम्परा का बेजोड़ उदाहरण आज विश्व में तेरापंथ धर्म संघ है, जिसकी उजागरता के लिए धर्मसंघ में सारे संघ की सारणा, वारणा और प्रेरणा एक कुशल आचार्य के नेतृत्व में होती है। तेरापंथ धर्मसंघ में हर गतिविधि और प्रवृत्ति के मुख्य केन्द्र आचार्य ही होते हैं। एक आचार्य, एक समाचारी, एक विचार—ये तेरापंथ धर्मसंघ की अखण्ड तेजस्विता का द्योतक है। एक सूत्र में आबद्ध, सैकड़ों साधु-साध्वियाँ विश्व में कीर्तिमान स्थापित करते हैं। इस गरिमामय संघ को पाकर हम अत्यन्त गौरवान्वित हैं।

×××××××××

ऋचो ह यो वेद, स वेद देवान्
यजूंषि यो वेद, स वेद यज्ञाम्॥
सामानि यो वेद, स वेद सर्वम्।
यो मानुषं वेद, स वेद ब्रह्मं॥

ऋग्वेद को जानने वाला, केवल देवताओं को जानता है, यजुर्वेद को जानने वाला यज्ञ को ही जानता है, सामवेद को जानने वाला सब को जानता है। किन्तु जो मनुष्य को जानता है, वही वास्तव में ब्रह्म को जानता है।

×××××××××

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org